THE TIMES OF INDIA

Date: 02-07-18

UGC Rebranded

Promising autonomy without relaxing political controls does not qualify as reform

TOI Editorials

It is widely accepted by now that education is India's best bet if it is to adapt and prosper in the midst of radical technological and political changes – such as automation and the rise of protectionism – that are disrupting the global economy. Crucially, this calls for a fundamental reorganisation of higher education. The draft bill mandating a new Higher Education Commission of India (HECI) to replace the University Grants Commission (UGC) zeroes in on the problem of poor quality of Indian higher education, and ticks boxes in terms of wanting to promote autonomy of institutions and academic standards. Yet there is ground for grave scepticism on whether HECI can rectify UGC's flaws which effectively hobble higher education.

Empowered to allocate grants and ensure standards in higher education, UGC ended up as a bureaucratic exercise in centralisation. Now the Union human resource development ministry will take over the grant giving function of UGC. HECI has been tasked with specifying learning outcomes, laying down teaching and research standards, evaluating yearly academic performance, and promoting research. But without the ability to offer monetary and other incentives for those scoring high on its regulatory watch HECI will, in itself, be reduced to a toothless tiger. As if to overcome this fundamental flaw, the ministry seems to be compensating HECI with penal powers that reflect the hyper-regulatory approach of a licence raj. Institutions not meeting HECI standards can be closed down and individuals heading them can even face imprisonment. But fear only breeds insecurity and constrains growth.

Quality cannot be decreed by government fiat and punitive measures. Among other things, they will surely prevent top flight foreign educational institutions from opening branches in India. Instead, institutions must be given autonomy and allowed to fail in a competitive market. Funding flows can also be used as a tool to incentivise quality. UGC's quality assessment and accreditation body, NAAC, having audited just 40% of universities and 20% of colleges by 2016 – despite being in existence for over 20 years – attests to the failure of bureaucratic centralisation. Allowing competent, independent agencies to undertake this accreditation function – the US has pursued this model for decades – would ensure constant monitoring and accelerate progress towards the regulator's quality goals. Light touch regulation with built in incentives is the best way to reform higher education.

नईदुनिया

Date: 02-07-18

जीएसटी का एक साल पूरा, देश में एक नई टैक्स प्रणाली को मिली कामयाबी

संपादकीय

यदि सरकार वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी पर अमल के एक वर्ष पूरे होने को एक उपलब्धि के तौर पर देख रही है तो यह स्वाभाविक ही है। भारत सरीखे बड़े देश में एक नई टैक्स प्रणाली को क्रियान्वित करना एक बड़ा काम ही कहा जाएगा। इस पर आश्चर्य नहीं कि इसे आजादी के बाद सबसे बड़े टैक्स सुधार की संज्ञा दी गई। यह अच्छा है कि एक साल बाद इस टैक्स व्यवस्था को उन अनेक समस्याओं से मुक्ति मिलती दिख रही है जो प्रारंभ में सामने आई थीं और जिनके चलते कारोबारियों में नाराजगी घर कर रही थी। चूंकि इस नाराजगी को राजनीतिक मसला बनाकर चुनावी लाभ उठाने की कोशिश की गई इसलिए जीएसटी की जटिलताओं को दूर करना सरकार के लिए एक चुनौती बन गया था। हालांकि एक बड़ी हद तक इस चुनौती से पार पा लिया गया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अभी भी कुछ समस्याएं शेष हैं।

अब जब सरकार जीएसटी के एक साल को एक उपलब्धि के तौर पर रेखांकित करने जा रही है तब फिर उसे इस पर भी ध्यान देना होगा कि यह टैक्स व्यवस्था और अधिक सुगम कैसे बने? इसी के साथ उसे रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म सरीखी लंबित व्यवस्थाओं पर आगे बढ़ने की भी तैयारी करनी होगी, लेकिन ऐसा करते समय उसे यह सावधानी बरतनी होगी कि वैसी समस्याएं आड़े न आने पाएं जैसी पहले जीएसटी को लागू करते समय और फिर ई-वे बिल को अपनाते समय आई थीं। यह हैरानी की बात ही है कि तकनीक के क्षेत्र के पेशेवर लोगों की भागीदारी के बावजूद तकनीकी बाधाएं दूर होने का नाम नहीं ले रही हैं। कम से कम एक साल बाद तो तकनीकी बाधाओं को दूर कर ही लिया जाना चाहिए। नि:संदेह प्रत्येक नई व्यवस्था में कुछ न कुछ समस्या आती ही है, लेकिन वह तब संकट बन जाती है जब उससे संबंधित तकनीक साथ नहीं देती।

जीएसटी के एक साल बाद यह भी देखा जाना चाहिए कि टैक्स चोरी के तौर-तरीकों पर लगाम कैसे लगे? इन तौर-तरीकों के खिलाफ सख्ती बरतने में तभी आसानी होगी जब रिटर्न फाइल करने की प्रक्रिया भी आसान बनेगी। जीएसटी का दूसरा साल पहले के मुकाबले कहीं अधिक आसान और लक्ष्यों को पूरा करने वाला बनना चाहिए। नि:संदेह ऐसा तभी हो पाएगा जब जीएसटी संबंधी कानून में बदलाव का काम अपेक्षित समय में पूरा हो जाए। अब यह भी समय की मांग है कि जीएसटी के स्लैब कम करने के बारे में किसी फैसले पर पहुंचा जाए। जब सभी यह मान रहे हैं कि चार स्लैब ज्यादा हैं तो फिर किसी नतीजे पर पहुंचा जाना चाहिए। रियल एस्टेट को जीएसटी के दायरे में लाने पर भी फैसले की दरकार है। इस बारे में कोई फैसला होने पर ही पेट्रोलियम उत्पादों को जीएसटी के दायरे में लाने पर कोई सार्थक चर्चा संभव है। चूंकि जीएसटी परिषद ने आम सहमति से काम करने के मामले में एक मिसाल कायम की है और अभी तक किसी भी

मामले में मतदान के जरिये फैसला कराने की नौबत नहीं आई है इसलिए इस परिषद को एक अनुकरणीय उदाहरण के तौर पर देखा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 01-07-18

टू प्लस टू का माइनस

डॉ. दिलीप चौबे

डोनाल्ड ट्रंप प्रशासन की अनिश्चयपूर्ण प्रकृति के कारण अमेरिका ने भारत के साथ अपनी पहली टू प्लस टू (दो जोड़ दो वार्ता) एक बार फिर स्थगित कर दी है। पिछले साल जून में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अमेरिकी यात्रा के दौरान इस वार्ता के प्रारूप पर दोनों देशों के बीच पारस्परिक सहमति बनी थी। यह माना जा रहा था कि इस वार्ता से दोनों देशों के रणनीतिक संबंधों को एक नई ऊंचाई मिलेगी। लेकिन सच तो यह है कि इस वार्ता के स्थगन से अमेरिकी नीति संदेह के घेरे में आ गई है। हालांकि अमेरिका के स्टेट सेक्रेटरी माइक पोम्पियो और भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने इस वार्ता को फिर से निर्धारित करने के लिए सहमति जताई है, लेकिन वास्तविकता यह है कि वाशिंगटन और नई दिल्ली के बढ़ते हुए दोस्ताना संबंधों के बीच ईरान का मुद्दा गतिरोधक के रूप में सामने आ रहा है। अभी भारत और अमेरिका के बीच व्यापार को लेकर युद्ध की जो स्थिति बनी हुई है, उसकी पृष्ठभूमि में नई दिल्ली और तेहरान के बीच ऊर्जा संबंध है। इसी कारण से अमेरिका भारत को रियायत देने से इनकार कर रहा है।

दरअसल, पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा के समय अमेरिका और ईरान के बीच जो परमाणु समझौता हुआ था, उसे ट्रंप ने खारिज कर दिया है। अमेरिका ने ईरान के खिलाफ सख्त प्रतिबंध लगा दिया है। अमेरिका की नजर में ईरान संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों का लगातार उल्लंघन कर रहा है, और परमाणु समझौते के नियमों की धज्जियां उड़ा रहा है, और कई क्षेत्रों में नियंतण्र आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा है। इसलिए वह ईरान को विश्व शांति के लिए खतरा मान रहा है। दरअसल, अमेरिका चाहता है कि भारत ईरान के साथ अपना व्यापारिक कारोबार पूरी तरह बंद कर दे जिससे कि ईरान को अपना परमाणु कार्यक्रम स्थगित करना पड़े। पिछले दिनों भारत के दौरे पर आई अमेरिकी राजदूत निक्की हेली के जरिए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने संदेश भिजवाया था कि भारत ईरान के बारे में अपनी नीति बदले। अमेरिका ने भारत, चीन समेत अन्य देशों से चार नवम्बर तक ईरान से कच्चे तेल का आयात बंद करने की अपील की है। भारत की विदेश नीति का सार तत्व रहा है कि वह किसी भी सैनिक और राजनीतिक लामबंदी से अलग रहता है।

इसीलिए किसी एक देश द्वारा किसी दूसरे पर लगाए प्रतिबंधों को स्वीकार नहीं करता। भारत सिर्फ संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंधों को मानता है। अभी एक पखवाड़े पहले विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने प्रेस वार्ता में विदेश नीति को स्पष्ट किया था। इसके बाद ही निक्की हेली को भारत आना पड़ा। ईरान के साथ भारत का रणनीतिक संबंध है। चाबहार बंदरगाह परियोजना में भारत प्रमुख हिस्सेदार है। भारत के लिए यह परियोजना सामरिक और रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके पूरा हो जाने पर भारत, ईरान और अफगानिस्तान के बीच सीधा सम्पर्क हो जाएगा। भारत का ईरान पर तेल की निर्भरता है। इन सारी स्थितियों को देखते हुए इन दोनों देशों के संबंधों से भारत और ईरान दोनों अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। इसलिए यह भारत की विदेश नीति के लिए बड़ी चुनौती है कि वह अमेरिका को नाराज किये बिना ईरान के साथ

अपने संबंधों को बनाये रखे। अगर अमेरिका चीन को काबू में रखने के लिएभारत-प्रशांत क्षेत्र में भारत की बड़ी भूमिका की अपेक्षा रखता है तो उसे भारतीय हितों की संवेदनशीलता का भी ध्यान रखना होगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 30-06-18

फिर खतरे की घंटी

संपादकीय

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की बात इतनी ज्यादा हो चुकी, इतनी चिंताएं जताई जा चुकीं कि अब तो कई बार इसकी चर्चा में भी संकोच लगता है। खतरे का ताजा इशारा विश्व बैंक की रिपोर्ट में है, जिसके अनुसार जलवायु परिवर्तन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बड़ा खतरा बनकर उभरने वाला है। 'दक्षिण एशियाई हॉट स्पॉट : तामपान का असर और जीवन स्तर का बदलाव' शीर्षक वाली यह रिपोर्ट बताती है कि जलवायु परिवर्तन के असर से 2050 तक भारत की जीडीपी को 2.8 प्रतिशत का नुकसान हो सकता है। जाहिर सी बात है, इसका कारण तामपान और वर्षा-चक्र का प्रभावित होना होगा। जिसका सीधा संबंध कृषि उपज और इंसानी सेहत से है, जो दूरगामी असर के तहत तब तक हमारी आधी के लगभग आबादी को घेरे में ले चुका होगा। विश्व बैंक रिपोर्ट भले ही अभी आई हो, खतरा तो पुराना है। एचएसबीसी बैंक ने भी कुछ माह पहले अपनी रैंकिंग में भारत को जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा खतरा बताया था, जिसमें पाकिस्तान, फिलीपींस और बांग्लादेश के नाम भारत के बाद थे। भारत के संदर्भ में दोनों रिपोर्ट चिंतित करने वाली हैं।

दोनों के निष्कर्ष कमोबेश समान हैं और इनके अनुसार सर्वाधिक प्रभावित मध्य, उत्तरी और उत्तर-पश्चिम इलाका होगा, क्योंकि ये इलाके जलवायु परिवर्तन के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील हैं। यानी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और महाराष्ट्र के लिए खतरे की एक और घंटी, जहां सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है और जिनकी अर्थव्यवस्था ही कृषि आधारित है। जाहिर है, इसके कारण कहीं सूखा, तो कहीं बाढ़ के हालात पैदा होंगे, जो पहले से ही इन आपदाओं से ग्रस्त इन राज्यों के लिए चिंता की बात होगी। इसका असर जनजीवन के साथ ही पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ना स्वाभाविक है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस तरह हम लगातार हालात की अनदेखी करते गए हैं, खामियाजा भी हमें ही भुगतना होगा। ग्लोबल वार्मिंग के मीटर पर भारत लगातार डेंजर जोन में बना हुआ है, लेकिन तमाम चेतावनियों के बावजूद हम नहीं चेते। मौसम बिगड़ने को कभी अल नीनो बताकर भूल गए, तो कभी कुछ और। संकट दूर होते ही सब कुछ भूलना हमारी फितरत में जो है।

यही कारण है कि इस पुरानी आशंका का भी हम पर कोई असर नहीं दिखता कि यही इंसानी फितरत रही, तो अगले 50 से सौ सालों में धरती का तापमान इतना बढ़ जाएगा कि हम कुछ नहीं कर पाएंगे। हम भूल जाते हैं कि इसके लिए वैज्ञानिक कारण ही नहीं, हमारी अपनी जीवनशैली भी कम दोषी नहीं है। हमने वन काटे, घरों में आंगन क्या पौधों की क्यारियां भी खत्म कर दीं। गांवों से तालाब खत्म हो गए। शहर कंक्रीट के जंगल बनते गए। अब तो हाईवे के किनारे भी हरियाली नहीं दिखती। दिल्ली में अभी जिस तरह मकान खडे करने के लिए पेड़ काटने का जन-विरोध हुआ, उसके जरूर संकेत अच्छे हैं। अदालती हस्तक्षेप के बाद ही सही, जिस तरह सरकार ने फैसला पलटा है, उसमें एक नजीर है। मानक तो यह कहते हैं कि एक पेड़ काटने के पहले दस पौधे रोपे जाएं, लेकिन दस पौधे रोपने की जगह भी हमने छोड़ी है

क्या? पेड़ हम यहां काटते हैं, पौधारोपण कहीं और होता है। यह पर्यावरण संतुलन के लिहाज से कितना कारगर है ? हम अब भी बहुत कुछ कर सकते हैं।

THE HINDU

Date: 30-06-18

Reform 101: On higher education

More thought is needed on the proposed regulatory body for higher education

Editorial

The provisions of the new Higher Education Commission of India (HECI) Bill drafted by the Centre have far-reaching implications for the expansion and quality of human resource development, at a time when access to skill-building and educational opportunity are vitally important. There were 864 recognised universities and 40,026 colleges in the country in 2016-17, while the gross enrolment ratio of students was only about 26%. To put this in perspective, there were only 20 universities and 500 colleges at the time of Independence. Previous attempts at system reform involving expert committees and even legislation to create a new body for higher education and research had advocated changes, with an emphasis on promoting autonomy, access, inclusion and opportunity for all.

That challenging goal will fall to the HECI, the proposed successor body to the University Grants Commission. For this very reason, the Centre should give sufficient time to academia, the teaching community and society at large to submit considered opinions on the draft proposals. Among the key questions that need resolution is the future role of multiple regulatory bodies that currently exist for engineering, medicine and law; the Yash Pal Committee had recommended that they should be brought under the ambit of a single commission. There is a case to include other professional education streams as well, including architecture and nursing. The aim should be to set academic benchmarks for each stream, with sufficient autonomy to innovate on courses and encourage studies across disciplines.

Among the more contentious issues arising out of the draft Bill is the Centre's decision to shift grant-giving powers for higher education institutions to the Ministry of Human Resource Development or a separate body. The UGC has been doing this so far, covering a variety of functions, and whatever the flaws, it ensured a separation of funding decisions from political considerations. Maintaining a balance on allocation of funds and ensuring transparency will now depend on the proposed advisory council to the HECI. It is welcome that the States are represented on the advisory council, giving it a federal character, although it is the Centre that will have the final say in all matters, not even the apex HECI.

At a broader level, higher education is challenged today by fast-paced technological changes affecting the economy and the need to create a workforce that has the requisite skills. Reform should, therefore, lead to the creation of an agency that has the intellectual corpus to help universities and colleges adapt, and the vision to plan for public funding in the emerging spheres of activity. There is a positive attempt in the draft legislation to weed out degree mills and dubious training institutions, with a provision for

prosecution and imprisonment of management officials who defy the HECI. Yet, this will take political will, given that over the past three decades laissez faire expansion of higher education has been pursued purely for commercial motives.